स्व. राजेन्द्र माथुर वाली पत्रकारिता अब इतिहास में ही मिलेगी

(7 अगस्त को हिंदी पत्रकारिता के शिखर पुरुष स्व. राजेंद्र माथुर (1935-1991) का जन्मदिन है)

आपातकाल लग चुका था। देश आजाद होने के बाद पहली बार प्रेस सेंसरशिप लगा दी गई थी। मैं कॉलेज में पढ़ता था। साथ में स्थानीय दैनिक शुभ भारत और दैनिक जागरण के साथ संवाददाता के रूप में पत्रकारिता की पारी शुरू कर चुका था। सेंसरशिप के चलते सारे पत्रकारों का खून खौला रहा था। दरअसल उन दिनों हर खबर को छापने से पहले जिला प्रशासन के एक वरिष्ठ अधिकारी से बाकायदा सील लगवा कर इजाजत लेनी होती थी। यह प्रक्रिया बेहद अपमानजनक थी। वह डिप्टी कलेक्टर बड़ी हेकड़ी दिखाते हुए खबरें अप्रूव करता था। हम लोग खून का घूंट पीकर रह जाते। हालांकि बाद में उदार जिला कलेक्टर आए। वे सेंसरशिप के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने हम लोगों को ऑफ द रिकॉर्ड खबर प्रकाशन की पूरी आजादी दे दी। केवल सरकारी रिकॉर्ड में कुछ प्रतियां छाप कर जमा करानी होती थीं। उन दिनों नईदुनिया अखबार अपनी निर्भीक नीति के कारण हम लोगों का चहेता बन गया था, जिस दिन आपातकाल लगा, उस दिन अखबार के संपादक राजेंद्र माथुर ने संपादकीय वाली जगह कोरी छोड़कर विरोध प्रदर्शन का नायाब नमूना पेश किया था। वो हमारे हीरो बन गए थे। छतरपुर जिले में उन दिनों नईदुनिया अगले दिन सुबह आता था- यानी चौबीस घंटे लेट। फिर भी लोग बेताबी से उसका इंतजार करते थे। नईदुनिया ने स्वतंत्र पत्रकारिता की लाज बचा कर रखी थी। ऐसे में उस समाचारपत्र का संवाददाता बनने की होड़ थी। मैंने राजेंद्र माथुर को एक चिट्ठी लिखी। चिट्ठी में संवाददाता बनने का अनुरोध था। कोई उत्तर नहीं आया। मैंने कुछ दिन बाद फिर पत्र लिखा। उसका भी कोई उत्तर नहीं। फिर मैं करीब करीब हर महीने- पंद्रह दिन में चिट्ठी लिखता रहा। साल भर बाद एक पोस्टकार्ड आया। संवाददाता बनाने से मना किया था। लिखा था ,छतरपुर बहुत दूर है। डाक से समाचार पहुंचते पहुंचते पुराने हो जाएंगे। फिर भी मैं अपना अनुरोध पत्र भेजता रहा। आखिरकार एक दिन नईदुनिया से मुझे एक फॉर्म मिला। लिखा था इसे भरकर भेज दीजिए। फिर विचार करेंगे। मैं फूलकर कुप्पा था- मानो मुझे संवाददाता बना ही दिया गया हो। पर कुछ नहीं हुआ। मैं थोड़ा थोड़ा निराश होने लगा। इसी बीच आपातकाल हटाने का ऐलान हुआ और आम चुनाव की भी घोषणा हो गई। एक दिन मुझे राजेंद्र माथुर का तार मिला। चुनाव सामग्री और बुंदेलखंड इलाके का चुनावी विश्लेषण मांगा था

छतरपुर जैसे छोटे से कस्बे में किसी नौजवान पत्रकार को नईदुनिया के प्रधान संपादक का तार ।साइकल उठाकर शहर के परिचितों को दिखाता फिरा। मेरे जैसे कस्बाई पत्रकार के लिए यकीनन गर्व की बात थी।

उन दिनों नईदुनिया हिंदी पत्रकारिता का सर्वश्रेष्ठ नाम था और राजेंद्र माथुर भारतीय हिंदी पत्रकारिता का सबसे बड़ा नाम। राजेंद्र माथुर देश भर के पत्रकारों-संपादकों के प्रेरणा स्रोत बन गए थे। इसके बाद उन्होंने सात मुद्दों की श्रृंखला लिखी। भारतीय हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में यह एक दस्तावेज है।

बहरहाल मैंने आलेख भेजा। छप गया। नईदुनिया और राजेंद्र माथुर से रिश्ते की शुरुआत हो गई। मैं लिखता। माथुर साहब हर दूसरे तीसरे आलेख पर अपनी राय देते। वे पत्र खुद लिखा करते थे। इन पत्रों ने मेरा हौसला बढ़ाया। अलबत्ता संवाददाता बनने का औपचारिक पत्र मुझे कभी नहीं मिला, लेकिन मेरे रिपोर्ताज छप रहे थे, मेरे लिए यही बहुत था।

इसी बीच भारतीय हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना घटी। इस घटना से मेरे पत्रकारिता जीवन में नया मोड़ आया। हुआ यह कि छतरपुर में नए कलेक्टर ने जॉइन किया। एक दिन उनका कुत्ता बंगले से निकलकर सड़क पर आ गया। एक ट्रक उसे कुचलकर चला गया। इससे कलेक्टर का पारा सातवें आसमान पर जा पहुंचा। उन्होंने एसपी को निर्देश दिया कि ट्रक को खोज कर ड्राइवर को गिरफ्तार किया जाए। सारे नाकों पर तलाशी अभियान चला। जिले भर की पुलिस ट्रक ढूंढने में लगी रही। वायरलेस पर सैकड़ों संदेश दौड़ते रहे। स्थानीय अखबारों में इसकी आलोचना हुई कि डाकू समस्या से जूझ रहे जिले में पुलिस इतना समय, ऊर्जा और संसाधनों अगर डाकू विरोधी अभियान में लगाती तो शायद कुछ गिरोह पकड़ में आ जाते। एक कुत्ते के लिए सरकारी साधनों का इस तरह इस्तेमाल बेजा है। इस पर कलेक्टर इतने खफा हुए कि उन्होंने जनसंपर्क अधिकारी को बुलाकर डांटा और हम लोगों को पहली चेतावनी मिली। इसके कुछ समय बाद बाद एक पुलिस इन्स्पेक्टर पर एक महिला से दुष्कर्म का आरोप लगा। इसके एक दिन पहले एक बच्ची के साथ भी दुष्कर्म की वारदात हुई थी। दोनों घटनाओं के विरोध में एक जुलूस निकला। इस पर पुलिस ने गोली चलाई। अनेक घायल हुए। घटना की मजिस्ट्रेटी जांच हुई। जांच रिपोर्ट में पुलिस को दोषी पाया गया। एक अधिकारी भी दोषी ठहराया गया। उस अधिकारी को कलेक्टर बचाना चाहते थे। कलेक्टर के इसमें निजी हित थे। उन्होंने जांच रपट ठंडे बस्ते में डाल दी।

उन दिनों दैनिक शुभभारत के साथ हम लोग जुड़े थे। शुभभारत के संपादक श्यामकिशोर अग्रवाल, मैं, शिवअनुराग पटेरिया और विभूति शर्मा जैसे नौजवान पत्रकारों का हमारा समूह था। इसी बीच खबर मिली कि जिस जांच रिपोर्ट को कलेक्टर दबा रहे हैं, वह हासिल हो सकती है। हमारे एक साथी को रिपोर्ट की कॉपी मिल गई। वह शुभभारत में छपी। फिर क्या था। कलेक्टर बौखला गए। वो चाहते थे कि हम उन्हें जांच रिपोर्ट का स्रोत बताएं। हमने मना कर दिया। इसके बाद तो उन्होंने सारे हथकंडे अपनाने शुरू कर दिए। हम लोगों को धमकाया जाने लगा, हमारे अभिभावकों को नौकरी खोने की चेतावनी दी गई। श्याम के पिता की किराना की दुकान थी। उस पर छापे पड़े। फर्जी केस बनाए गए। कॉलेज के प्राचार्य पर हमें कॉलेज से निकालने का दबाव डाला गया। हमारे खिलाफ हमारे ही शहर में लाउडस्पीकर पर दिन भर प्रचार होता था। जीना मुश्किल हो गया था।

मैं उन दिनों अपने चाचाजी के घर रहता था। चाचा जी को एक और शिक्षक ने कलेक्टर के इशारे पर चेतावनी दी कि अपने भतीजे को घर से निकालो अन्यथा उनके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी। चाचाजी परेशान हो गए। इसी तरह विभूति और पटेरिया के साथ भी हुआ। शुरू में तो पुलिस कलेक्टर के निर्देश

पर काम कर रही थी। लेकिन बाद में पुलिसअधीक्षक को लगा कि हमारे साथ गलत हो रहा है तो उन्होंने हमें समर्थन दिया। इससे कलेक्टर और भड़क गए। उन्होंने किराए पर लिए गुंडों की फौज हमारे खिलाफ उतार दी। ये गुंडे उत्तरप्रदेश के झांसी जिले से लाए गए थे। आत्मसमर्पण कर चुके कुछ डाकुओं का सहारा भी हमें दहशत में डालने के लिए किया गया। हमने विरोध में एक दिन अखबार बंद रखे। एक दिन अखबार का पहला पन्ना केवल विरोध दिवस लिख कर खाली छोड़ा। इस बीच ज्यों ज्यों कलेक्टर हमारे खिलाफ होते गए, हमें समाज और पत्रकार बिरादरी का समर्थन मिलता गया। इक्का दुक्का पत्रकारों को छोड़, जो कलेक्टर से विज्ञापन लेते थे, हथियारों के लाइसेंस और तबादलों में दलाली करते थे। उस समय के एक बड़े राजनेता भी हमारे खिलाफ हो गए थे। एक बारगी तो लगने लगा कि शहर छोड़ दें। पानी सर से गुजर गया तो हम करीब पंद्रह-सोलह पत्रकार बस में सवार होकर भोपाल आ गए। हमें 27 रुपए भोपाल तक का किराया भी भारी था। डिपो मैनेजर अरुण श्रीवास्तव ने हमें आधे किराए का पास दिया और बचे पैसे हमें कई दिन बापू की कुटिया में खाना खाने के काम आए।

उन दिनों न्यू मार्केट के इस ढाबे में हम तीन या चार रुपए में भरपेट खाना खा लेते थे। ठहरने की नि:शुल्क सुविधा हमें कामरेड कपूरचंद घुआरा और शंकरप्रताप सिंह के विधायक निवास में मिल गई थी। तीन चार दिन भटके। भोपाल के बड़े बड़े पत्रकारों तक ने हमें घास नहीं डाली। तब विजयदत्त श्रीधर और आंचलिक पत्रकार संघ ने बहुत साथ दिया। एक दिन प्रतिपक्ष के नेता सुंदरलाल पटवा के पास पहुंचे। उन्होंने सारी कहानी सुनी। पटवाजी हैरत में थे कलेक्टर की करतूतें जानकर। उनके प्रयास से एक दिन विधानसभा में इस मसले पर अनेक घंटे धुआंधार बहस हुई। जिस दिन यह बहस हुई, हमारे पास खाने तक के पैसे नहीं बचे थे और एक दिन पहले ही हम रोडवेज की बस से छतरपुर लौट गए थे। बहस के बाद शाम करीब छह बजे मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह ने विधानसभा में मामले की न्यायिक जांच का ऐलान किया। भारत की आजादी के बाद पत्रकारों की प्रताड़ना का यह पहला और आखिरी मामला है, जिसमें न्यायिक जांच कराई गई। मैंने और अनेक मित्रों ने अपने अपने अखबारों में जमकर लिखा। हमें भरपूर समर्थन मिला। इस मसले पर मैंने लगातार नईदुनिया, देशबंधु ब्लिट्ज, करंट, ज्ञानयुग प्रभात, दीनोदय, दैनिक जागरण और रविवार जैसे पत्र पत्रिकाओं में लिखा। तब तक राजेंद्र माथुर नईदुनिया के प्रधान संपादक हो गए थे। उन्होंने और रविवार के संपादक सुरेंद्रप्रताप सिंह ने बहुत सहयोग किया। उन्होंने संपादकीय भी लिखे। सरकार पर भारी दबाव बना। मुझे इसका फायदा मिला।एक दिन माथुर साहब का पत्र मिला। लिखा था- इंदौर मिलने आइए। आने जाने का किराया दे देंगे। मैं उस अलौकिक अखबार के दफ्तर में जा पहुंचा। जिस अखबार का संवाददाता न बन सका, उसका उप संपादक बनने का प्रस्ताव। लॉटरी खुल गई। राजेंद्र माथुर के प्रति मन श्रद्धा से भर गया।

नईदुनिया ने मुझे संपादकीय विभाग में बतौर प्रशिक्षु उप संपादक काम करने का ऑफर दिया। मैंने जॉइन कर लिया। इस बीच सरकार की घोषणा के मुताबिक न्यायाधीश देवीप्रसाद पांडे आयोग ने छतरपुर में काम शुरू किया। इसमें गवाही के लिए मैं इंदौर से आता था। हमारे साथी जगदीश तिवारी ने इस केस की पैरवी के लिए महीनों तक अपनी वकालत बंद रखी। जगदीश तिवारी दिल्ली से प्रकाशित जनयुग के संवाददाता भी थे। जब आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी तो जहां तक मुझे याद आता है, जांच के सात बिंदुओं में से साढ़े छह आरोप सही पाए गए थे। आधा आरोप इसलिए सिद्ध नहीं हो पाया क्योंकि एक गवाह कलेक्टर के दबाव में गवाही देने नहीं आया था। इस तरह जांच आयोग के जरिए हमें

जीत मिली। अफसोस राज्य सरकार ने आयोग की सिफारिशें तो मानी लेकिन कलेक्टर की सीआर में कोई प्रतिकूल टिप्पणी दर्ज नहीं की गई और हम लोग लड़ाई जीत कर भी हार गए थे। राजेंद्र माथुर ने इस मामले में तीखे संपादकीय लिख कर सरकार को हिला दिया था।

उन दिनों अविभाजित मध्यप्रदेश समेत देश भर में इस मामले की गूँज थी और हम लोगों को दूर दूर तक पत्रकारों के संघर्ष पर व्याख्यान के लिए बुलाया जाता था। हमारे लिए यह बहुत बड़ी बात थी। हां एक बात और है कि जब हम लोगों के उत्पीड़न की खबर इंडियन एक्सप्रेस समेत देश के तमाम राष्ट्रीय अखबारों में छपी तो प्रेस कौंसिल ऑफ इंडिया ने सुओ मोटो इसकी जांच कराने का फैसला किया। जांच समिति आई। उसने जांच की तो उसमें भी हमारे सारे आरोप सही पाए गए। ऐसा नहीं होता कि दो अर्ध न्यायिक एजेंसियां एक समय में एक ही मामले की जांच करें, लेकिन इस मामले में ऐसा हुआ। इस तरह भारत में प्रेस की अभिव्यक्ति का अपने किस्म का यह अनोखा मामला है। तो इस मामले ने पत्रकारिता में अपने सरोकारों के लिए न केवल संघर्ष का रास्ता दिखाया, बल्कि रोजगार का द्वार भी खोला। मैं उन दिनों रेडियो में कैजुअल अनाउंसर और महाराजा महाविद्यालय में अनुबंध के आधार पर इतिहास पढ़ा रहा था। स्वर्गीय राजेंद्र माथुर को मेरे मामले में श्रेय जाता है कि उन्होंने दिशा ही बदल दी।

पत्रकार के तौर पर बुंदेलखंड जैसे पिछड़े इलाके से अंग्रेजी में लिखने का अवसर कम हीआता था। यू.एन.आई और पी.टी.आई के लिए केवल स्थानीय खबरें ही भेजीं थीं। माथुरजी ने जॉइन करते ही संपादकीय पन्ने के लिए एक आलेख अनुवाद करने दिया। अगर मुझे याद है तो वह आलेख कुलदीप नैयर का था। शायद वे मेरी अंग्रेजी जांचना चाहते थे। जाहिर था- मैं उनकी अपेक्षा पर खरा नहीं उतरा। इसके बाद उनका आदेश था-रोज सुबह घर आओ। मैं अनुवाद सिखाऊंगा।

अगले दिन सुबह से किराए की साइकल लेकर पांच किलोमीटर दूर उनके घर जाता और वे मुझे अंग्रेजी पढ़ाते। करीब तीन महीने उन्होंने पढ़ाया। गुरु के रूप में राजेंद्र माथुर मेरे सामने थे। दिन गुजरते रहे। वे अखबार की हर विधा में मुझे पारंगत देखना चाहते थे। कुछ दिन बाद उन्होंने मुझे भोपाल संस्करण का स्वतंत्र प्रभार दे दिया। देखते ही देखते संस्करण का प्रसार दोगुना हो गया। इसके बाद उन्होंने ग्रामीण रूपकों के पृष्ठ-परिवेश की जिम्मेदारी भी मुझे सौंप दी। मुझे काम में मजा आने लगा था। मेरे शीर्षक और ले आउट उन्हें बहुत पसंद आते थे। मैं केवल सोने के लिए अपने दड़बे में जाया करता था। बाकी समय दफ्तर में ही बीतता था। कुछ दिन बाद मुझे डेस्क से कुछ ऊब सी होने लगी। मैंने एक दिन उनसे कहा, अब तक मैंने रिपोर्टिंग में काफी समय बिताया है। संभव हो तो रिपोर्टिंग में लगा दें। वो मान तो गए, लेकिन इस शर्त पर कि मैं अपने अन्य सारे काम भी करता रहूंगा। मुझे एक नई साइकल दी गई। यह साइकल अनेक दिन तक कार्यालय में चर्चा का विषय बनी रही। शायद मैं पहला रिपोर्टर था, जिसे नई साइकल खरीदकर दी गई थी।

राजेंद्र माथुर भाषा की शुद्धता और शब्दों के इस्तेमाल को लेकर बहुत संवेदनशील थे। अक्सर संपादकीय विभाग में इस पर बहस छिड़ जाती कि अमुक शब्द किस तरह लिखा जाना चाहिए। माथुर साब भी उस बहस में शामिल होते थे। अंततः किसी वाक्य और अनुवाद में सर्वश्रेष्ठ शब्द के चुनाव पर ही सहमति बनती थी। फिर भी उन्होंने एक नए ढंग की कक्षा शुरू की। प्रूफ रीडर से लेकर प्रबंध संपादक तक इसमें हिस्सा लेते। विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापकों से लेकर विद्वान तक हमें पढ़ाने

आते। हमारी हिंदी ठीक करते। इन कक्षाओं में काफ़ी मशक़्क़त के बाद अखबार की स्टाइल शीट तैयार हुई। मेरे ख्याल से देश में आज भी किसी समाचार पत्र में ऐसा नहीं होता। इसी वजह से राजेंद्र माथुर स्कूल से निकले पत्रकार आज भी भाषा और शब्दों की गरीबी का सामना नहीं करते।

उन दिनों रविवार देश का सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक था। संपादक थे सुरेंद्रप्रताप सिंह। पत्रकारों के बीच वो एसपी के नाम से लोकप्रिय थे। एसपी किसी काम से इंदौर आए। दोनों शिखर संपादकों की बैठक रविवार में यायावर की डायरी स्तंभ के लेखक बसंत पोतदार के मार्तण्ड चौक वाले घर में हुई। मैं बसंत दा के घर मौजूद था। बसंत दा ने ही मेरी मुलाकात एसपी से कराई। मुलाकात के दौरान एसपी ने माथुर साहब से कहा कि राजेश को रविवार के लिए मध्य प्रदेश का संवाददाता बनाना चाहते हैं। क्या रविवार के लिए नईदुनिया से मुक्त कर सकेंगे। राजेंद्र माथुर ने सीधे तौर पर न तो नहीं कहा लेकिन रविवार के लिए नईदुनिया में रहते हुए रिपोर्टिंग की अनुमति दे दी। इस तरह रविवार में मेरी रिपोर्टिंग शुरू हो गई। क्या आज के भारत में कोई संपादक इस तरह की अनुमति दे सकता है ?

बहरहाल, रविवार के साथ रिपोर्टिंग के दौरान कभी न भूलने वाला एक वाकया है। हुआ यह कि उन दिनों मध्य प्रदेश के कद्दावर मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह पर भारतीय जनता पार्टी ने भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगाए। एसपी ने उस पर एक कवर स्टोरी मांगी। मैंने भेजी। छपते ही हड़कंप मच गया। नईदुनिया पर मुझे नौकरी से निकालने का दबाव आया। सरकारी विज्ञापन बंद करने की धमकी दी गई। माथुर साब पर मुझे निकालने का दबाव बढ़ता गया। मैंने तय किया कि मैं इस्तीफा दे दूंगा। माथुरजी पर आंच नहीं आनी चाहिए। मैंने एसपी को कोलकाता फ़ोन लगा कर जानकारी दी। एसपी ने कहा, राजेश ! चिंता मत करो। माथुरजी का सम्मान मेरा अपना सम्मान है। मैं तुम्हारा रविवार में नियुक्ति पत्र भेज रहा हूं। शाम होते होते टेलेक्स पर रविवार का संदेश आ गया। मैं माथुरजी के पास गया और उन्हें सारा हाल बताया। माथुर जी हंस पड़े। बोले, तुम्हें इस्तीफा देने की जरूरत नहीं है। देना ही पड़ेगा तो मैं दूंगा। और मैनेजमेंट को जब माथुरजी ने अपने इस्तीफे की पेशकश की तो सारे लोग परेशान हो गए। माथुर जी और नईदुनिया एक ही सिक्के के दो रूप थे। बताने की जरूरत नहीं कि न मेरी नौकरी गई और न माथुरजी को इस्तीफा देना पड़ा। क्या आज के दौर में आप ऐसे संपादक की कल्पना भी कर सकते हैं ?

राजेंद्र माथुर के संपादन की क्या मिसाल दूं। किसी भी आलेख की संपादित प्रति देखिए। आप दंग रह जाएंगे। उनके पास आलेख की आत्मा से खिलवाड़ किए बिना उसे छोटा करने का अद्भुत कौशल था। एक और बात। संपादकीय लिखने के बाद उसे किसी दूसरे उपसंपादक को संपादित करने के लिए देते थे। मेरी सीट उनकी कुर्सी के ठीक पीछे थी। अपना लेख या संपादकीय लिखने के बाद वो मेरी तरफ उसे बढ़ा देते। पहली बार जब उन्होंने मुझे संपादन के लिए प्रति दी तो मैं हक्का बक्का रह गया। माथुरजी के लिखे हुए को मैं संपादित करूं ? उन्होंने मेरी झिझक पकड़ ली। बोले भूल जाओ कि तुम संपादक के लेख को संपादित कर रहे हो। तुम संपादक हो और तुम्हारे सामने एक आलेख है। हालांकि उसके बाद भी कई दिन तक मैं उनके संपादकीय और आलेख डर डर कर संपादित करता रहा। इसी बीच वे 1982 में नवभारत टाइम्स के प्रधान संपादक बनकर दिल्ली जा पहुंचे। उनके जाने के बाद नईदुनिया प्रबंधन ने मुझ पर भरोसा किया। करीब साल भर बाद मैं उसी कुर्सी पर बैठकर काम कर रहा था, जिस पर माथुर साहब बैठते थे। मेरे लिए इससे बड़ा और क्या हो सकता था ? भोपाल संस्करण, संपादकीय पृष्ठ, संपादक के नाम पत्र, रविवारीय संस्करण, मध्य साप्ताहिक और एक तरह से पूरे अखबार का ही जिम्मा

मुझ पर आ गया था।

जिस दिन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हुई, उस दिन सुबह सुबह खबर मिल गई थी। अभय छजलानी जी के मार्गदर्शन में हम लोग सारे दिन छोटे आकार का अखबार निकालते रहे। अगले दिन मैंने माथुर जी को सारे अखबार डाक से भेजे। आप यकीन नहीं करेंगे। उन्होंने सारे अखबारों में लाल स्याही से अपने निशान लगाकर मेरे पास भेजे इस टिप्पणी के साथ कि वो अंक और बेहतर कैसे बनाए जा सकते थे। इसके चंद रोज बाद सदी की भीषण मानवीय त्रासदी भोपाल में गैस कांड के रूप में सामने आई। उस रात और अगले कुछ दिन हम लोगों ने गैस कांड का खास कवरेज किया। उस दिन माथुर साब दिल्ली से इंदौर आए हुए थे। उन्हें खबर मिली तो सीधे नईदुनिया आए। हम लोग उन्हें अचानक देखकर चौंक गए। क्या दिलचस्प नजारा था। उन्होंने उसी कुर्सी पर बैठकर नवभारत टाइम्स के लिए अपना विशेष संपादकीय दिल्ली भेजा, जिस पर नईदुनिया के दिनों में लिखते थे। पहले की तरह मैंने उस आलेख का संपादन किया और दिल्ली भेजा। उस दिन मन बार बार यही मनाता रहा- काश! माथुर जी हमेशा की तरह लिखते रहें। हम उन्हें देखते रहें।

सिलसिला चलता रहा। माथुर साहब जब इंदौर आते, मैं मिलने पहुंच जाता। वे बड़े उत्साह से नवभारत टाइम्स में हो रहे बदलावों का जिक्र करते थे। एक दिन (शायद 28 जुलाई 1985) दिल्ली से उनका फोन नईदुनिया के दफ्तर आया। मैं उन दिनों तक अखबार की अनेक जिम्मेदारियां संभाल रहा था। माथुर जी ने कहा- एक सप्ताह के भीतर जयपुर पहुंचो। नवभारत टाइम्स जयपुर संस्करण शुरू करने जा रहा था। माथुर साहब एक नए अंदाज और अवतार में थे। उन दिनों नवभारत टाइम्स में प्रवेश के लिए लिखित परीक्षा और साक्षात्कार देना जरूरी था। लेकिन मेरे लिए उन्होंने कहा, जिसे मैंने तैयार किया है, उसे किसी परीक्षा की आवश्यकता नहीं। मैं सीधे ही जयपुर जॉइन करने पहुंचा था। ये था उनका भरोसा।

मैंने वरिष्ठ वरिष्ठ उप संपादक के रूप में जयपुर जॉइन किया। इसके बाद अगले पांच- छह साल उनके मार्गदर्शन में एक बार फिर काम किया। देश की राजनीति में वह राजीव गांधी के चमत्कारिक उत्थान और असमय अवसान का काल है। राजेंद्र माथुर ने पंजाब में आतंकवाद, ऑपरेशन ब्लू स्टार, इंदिरा गांधी की हत्या, राजीव गांधी- लोंगोवाल समझौता, भारत की दुनिया भर में बेहतर होती स्थिति, श्रीलंका में शांति सेना, जनता दल का उदय, बोफोर्स विवाद, कम्प्यूटर युग की शुरुआत, कश्मीर में अशांति का एक भयानक दौर, राजीव गांधी की धुंधलाती छवि, बीजेपी की रथयात्रा और चंद्रशेखर की अस्थिर सरकार पर जिस तरह अपनी कलम चलाई, उसकी मिसाल कम से कम हिंदी पत्रकारिता में तो दूसरी नहीं है।

जयपुर में इन्ही दिनों भाचावत वेतन आयोग की सिफारिशों को लागू करने की मांग को लेकर जयपुर नवभारत टाइम्स में हड़ताल हुई। तालाबंदी की नौबत आ गई। हम लोगों का तबादला दिल्ली कर दिया गया। राजेंद्रमाथुर ने मुझे फीचर संपादक बनाया और रिपोर्टिंग की जिम्मेदारी भी सौंपी। उनके भरोसे पर खरा उतरा। जयपुर में तालाबंदी खत्म हुई। एक बार फिर मैं मुख्य उप संपादक के तौर पर जयपुर में था। जयपुर का नवभारत टाइम्स और वहां की संपादकीय टीम को श्री माथुर सारे संस्करणों में श्रेष्ठ मानते थे। इसलिए यह संस्करण उनका हमेशा चहेता बना रहा। तालाबंदी के बाद तो नवभारत टाइम्स ने उत्कृष्ट पत्रकारिता के अनेक कीर्तिमान गढ़े। राजेंद्र माथुर की कलम ने पाठकों को दीवाना

बना दिया। भारत में आज भी संपादक प्रधानमंत्री से मिलने और उनके साथ चाय पीने के लिए लार टपकाते हैं। लेकिन राजेंद्र माथुर को राजीव गांधी ने न जाने कितने बार बुलाया और वो कभी नहीं गए। कहते थे मेरा राजनीतिक रिपोर्टर आपसे मिलेगा।

राजेन्द्र माथुर और सुरेन्द्र प्रताप सिंह की जोड़ी ने देश की हिंदी पत्रकारिता को ऐसे सुनहरे दिन दिखाए, जो उस दौर के हिन्दुस्तान में लोगों को चमत्कृत कर रही थी। इससे पहले सन 1982 से 87-88 तक राजेन्द्र माथुर ने नवभारत टाइम्स के पन्नों पर जितने प्रयोग किए वे अद्भुत और चौंकाने वाले थे। अखबार के संस्करण दिल्ली और मुंबई से निकलकर पटना, लखनऊ और जयपुर जैसे प्रादेशिक अवतारों में प्रकट हुए। बताने की जरूरत नहीं कि इन अखबारों ने निष्पक्ष, निर्भीक और जिम्मेदार पत्रकारिता के एक से बढ़कर एक नमूने पेश किए। भारत की आजादी के बाद कभी ऐसा नहीं हुआ था। करीब-करीब हर संस्करण एक लाख प्रसार संख्या छू रहा था। उस दौर में यह एक करिश्मा ही था। एक तरफ पत्रकारिता के नित नए कीर्तिमान रचते राजेन्द्र माथुर तो दूसरी तरफ पत्रकारिता को साबुन बनाकर बेचने की कोशिश करता प्रबन्धन। एक ओर नाविक राजेंद्र माथुर जहाज को फुल स्पीड पर दौड़ाने के प्रयास में। तो दूसरी ओर जहाज के पेंदे में किए जा रहे छोटे-छोटे सुराख। एक तरफ पत्रकारिता की ऊंचाई छूते पेशेवर तो दूसरी तरफ लोकप्रिय पत्रिकाओं की होती हत्या। वह एक भयावह दौर था। विडंबना यह कि- उनके निधन के बाद सारे संस्करण बंद हो गए। कोई संपादक चला ही नहीं पाया। संवेदनाओं के किसी धरातल पर कलम का यह महानायक इस दौर के क्रूर चेहरे को महसूस करता रहा और अभिमन्यु की तरह अकेला मुकाबला करता रहा।

बहरहाल! उन्नीस सौ नब्बे और इक्यानवे के दरम्यान देश की राजनीति के साथ पत्रकारिता भी उथलपुथल से गुजर रही थी। नवभारत टाइम्स में अगली पीढ़ी प्रबंधन में आई, बाजार का दबाव बढ़ने लगा। माथुर साब पहली बार कुछ कुछ असहज नजर आ रहे थे।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार व , राज्यसभा टीवी के पूर्व कार्यकारी निदेशक हैं)